

मन की अवधारणा: श्रीमद्भगवद्गीता के संदर्भ में

अखिलेश कुमार विश्वकर्मा पी एच. डी. शोधार्थी (योग)

Email Id- akhilhariom123@gmail.com

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
अकादमिक परिषद्- बारला. रायसेन 464551 (म.प्र.)

सार संक्षेपिका

शरीर, मन और चेतना के सम्यक् विज्ञान से मनुष्य का निर्माण होता है। ये तीन आधार स्तम्भ जिस मनुष्य के स्वस्थ और दैवीय सम्पदा से युक्त होंगे वह मनुष्य उतना ही सुखी, आनन्दित और मुक्ति के पथ पर अग्रसर होगा अन्यथा अस्वस्थ और आसुरी सम्पदाएं मनुष्य को दुःख, विनाश और मृत्यु की ओर ही ले जाती हैं। इन तीन स्तम्भों में भी मन ही प्रमुख है जिसके साधने पर अन्य दो स्तम्भ बहुत हद तक सध जाते हैं। मन को साधने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता सहित सभी ग्रंथों में विविध युक्तियों का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को मन की चंचलता शान्त करने के उपाय बताकर मन को संयमित और एकाग्र बनाने के लिए योग की विविध युक्तियों का वर्णन करते हैं। जिससे साधक सुख, शान्ति और परम गति की ओर अग्रसर होता है।

सामान्यतया यौगिक परम्परा में मन की अवधारणा सामान्य मन से भिन्न है, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के अनुसार 'यौगिक परम्परा में चेतना और शक्ति के ये दो बाह्य सिद्धान्त सम्पूर्ण मन के नाम से जाने जाते हैं।' यद्यपि ऐकादश इन्द्रियों में मन एक उभय इन्द्रिय है तथापि मन को अन्य इन्द्रियों और बुद्धि का सेतु माना जाता है।

कूट शब्द: मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, दैवीय सम्पदा, आसुरी सम्पदा।

भूमिका

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः। मैत्राण्युपनिषद्- 4.4

शरीर के वे अंग जिनकी शक्ति हमें विषयों का ज्ञान या बोध कराती है 'इन्द्रियाँ' कहलाते हैं। इन्द्रियाँ ही मनुष्य को संसार से बांधे रखने का कार्य करती हैं। संसार के विषयों को इन्द्रियाँ ग्रहण करके सूचनाओं, भावों, संवेदनाओं को मन में प्रेषित करती हैं। मन बुद्धि को, बुद्धि चिंतन, मनन और विश्लेषण करके उस भाव को कार्य रूप प्रदान करने के लिए कर्मेन्द्रियों को प्रेरित करती है। जिससे अच्छे या बुरे कर्मों का निर्माण होता है। ये कर्म ही संस्कारों का निर्माण करते हैं और ये संस्कार ही सुख-दुःख के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार जो इन्द्रियों से ग्रहण किया जायगा वही अन्त में मनुष्य के सुख-दुःख का कारण बनेगा। शुभ विषयों का उपभोग शुभ संस्कारों का निर्माण करता है जो सुख का हेतु होता है, इसी प्रकार अशुभ विषयों का उपभोग दुःख का जो संसार के बंधन का हेतु बनता है। शुभ-अशुभ भाव से रहित कर्म अर्थात् अनासक्त कर्म 'कर्मयोग' कहलाता है जिसके कोई भी शुभ या अशुभ संस्कार नहीं बनते। अस्तु ऐसा कर्म ही मुक्ति का हेतु होता है।

सुख-दुःख, बंधन-मोक्ष की कुंजी 'मन' है। मन का जैसा स्वभाव या प्रकृति होगी मन वैसा ही आदेश इन्द्रियों को विषय ग्रहण करने के लिए देगा। इसलिए मन को विषयों की आसक्ति से मुक्त रखना चाहिए। क्योंकि यदि आसक्ति का नाश न किया जाय तो ये हठी स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बुद्धिमान पुरुष के मन को भी हर लेती हैं।¹

अस्तु मन के स्वभाव को श्रेष्ठ, कल्याणकारी और दिव्य बनाना मनुष्य के हित में है जिसका वृहद् विवरण 'श्रीमद्भगवद्गीता' में विशेष रूप से प्राप्त होता है।

मन की उत्पत्ति

सांख्य दर्शन के सिद्धान्तानुसार प्रकृति से सर्वप्रथम महत् की उत्पत्ति हुई जिसको बुद्धि कहा जाता है, बुद्धि से अहंकार और अहंकार से मनस् की उत्पत्ति होती है। इसी सिद्धांत का समर्थन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण मन को प्रकृति निर्माण के मूल अष्ट तत्वों में से एक मानते हैं, ये तत्व हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार।² इस प्रकार सृष्टि निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत 'मन' एक अभिन्न अंग है।

¹ यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। श्रीमद्भगवद्गीता- 2, 60.

² भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

मन का स्वरूप

मनस्यति अनेन इति मनः अर्थात् जिसके द्वारा मनन किया जाता है उसे 'मन' कहा जाता है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच कर्मेन्द्रियों के इतर मन एक ग्याहरवीं इन्द्रिय है। जिसको उभय इन्द्रिय और षडेन्द्रिय के नाम से जाना जाता है। शरीर के अन्दर रहने के कारण मन को अन्तरिन्द्रिय भी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मन को छठी इन्द्रिय माना है।³ बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार मन अनन्त सामर्थ्य से परिपूर्ण है।⁴ मन में जो संकल्प जाग जाए उसे विरत करना फिर बड़ा कठिन हो जाता है। इसलिए ऋषि मन को शुभ संकल्पों से युक्त बनाने की प्रार्थना करते हैं। शिवसंकल्पोपनिषद् के प्रत्येक मंत्र में मन को ईश्वर से शुभ या कल्याणकारी भावों से भरने की प्रार्थना की है।⁵

मन के भेद

सामान्यतया मन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— पहला शुद्ध या उच्चतर मन और दूसरा अशुद्ध या निम्नतर मन।⁶ अशुद्ध मन इच्छा, आकांक्षा, कामना, वासना, तृष्णा एवं आसुरी सम्पदा के अधीन होता है साथ ही बाह्य पदार्थों से इन्द्रिय तृप्ति की कामना करता है। यह भौतिक सुख और संतुष्टि के लिए ही सदैव उद्वत रहता है। रज और तमो गुण से युक्त मन अशुद्धमन कहलाता है। दूसरा शुद्धमन शुभ संकल्पों से युक्त, प्रकाशमय, ज्योतिर्मय, शान्त और दैवीय सम्पदा से युक्त होता है। आत्मोत्थान के भाव इसमें निहित होते हैं। शुभ और कल्याण की भावना से प्रेरित सत्त्वगुण प्रधान मन शुद्धमन होता है। ऐसा मन भगवत् शरणागति में निरन्तर वास करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ऐसे ही भक्त को प्रिय मानते हैं जिसका मन, और बुद्धि ईश्वर में ही अर्पित है।⁷ जो दैवीय सम्पदा से युक्त हैं जिनकी गति उर्द्धगामी होती है। अन्य दूसरे प्रकार के लोग जिनमें ईष्ट के प्रति श्रद्धा भाव नहीं है जो आसुरी सम्पदा से युक्त हैं उनकी गति अधोगामी होती है।

मन के कार्य

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ श्रीमद्भगवद्गीता— 7, 4.

³ मनः षष्ठानीन्द्रियाणि ॥

⁴ अनन्तं वै मनः ॥ बृहदारण्यकोपनिषद्— 3,1,9.

⁵ तन्मे मनः शिवसंकल्पंस्तु। शिवसंकल्पोपनिषद्— 1.

⁶ दृष्टव्य— योग दर्शन स्वामी निरञ्जनानन्द सरस्वती

⁷ सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मदभक्तः स मे प्रियः। श्रीमद्भगवद्गीता— 12, 14.

‘मन ही देखता है, मन ही सुनता है काम, संकल्प, श्रद्धा आदि सब में मन ही कारणभूत है।’⁸ मनस् तत्त्व बुद्धि को बाह्यज्ञान की सूचना देता है, ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को बुद्धि तक पहुंचाता है। मन इन्द्रियों से श्रेष्ठ है⁹, अस्तु मन सभी इन्द्रियों के विषयों को जान सकता है, उपभोग कर सकता है जबकि एक इन्द्रिय केवल एक विषय को जान सकता है। इस प्रकार मन के कार्य अन्य दस इन्द्रियों से अधिक होते हैं।

मनोनिग्रह के उपाय

मन का यदि निग्रह न किया जाय तो मन इन्द्रियों को विषयों में लगाकर मनुष्य को अधोगामी बना देगा और यदि उसी मन को इन्द्रियों के मनोनूकूल दिशा से विमुख करके आत्मोद्धार में नियोजित किया जाय तो वही मन परम गति का हेतु भी बन सकता है। इसीलिए शास्त्र मनोनिग्रह की विविध युक्तियाँ व्याख्यायित करते हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है कि मन तथा इन्द्रियों की शक्तियों को एकाग्र करना परम तप है।¹⁰

अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से चंचल मन की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि हे भगवन! यह मन चंचल स्वभाव वाला है इसको वश में करना वायु को वश में करने की भांति अत्यंत दुष्कर है।¹¹ मन के चंचल स्वभाव को वश में करने के उपायभूत भगवान श्रीकृष्ण ‘अभ्यास और वैराग्य’ नाम के दो उपाय सुझाते हैं।¹² भगवान कहते हैं कि अस्थिर स्वभाव वाला और चंचल मन जब-जब शब्दादि विषयों के वशीभूत हो कर संसार में विचरण करे जब-तब उसे विषयों से हटाकर बार-बार परमात्मा में निरुद्ध करें।¹³ इन्द्रियों को विषयों से वापस लाकर अपने केन्द्र में स्थापित करने की प्रक्रिया प्रत्याहार कहलाती है। प्रत्याहार का अभ्यास मन को दृढ़ता एवं एकाग्रता प्रदान करता है।

मुख्य विषय इच्छा के शमन करने का है क्योंकि इच्छा ही मन का पोषण करती है। इच्छा को श्रीमद्भगवद्गीता में संकल्प के नाम से अभिव्यक्त किया है। संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाएं त्यागकर मन को विषयों से रोककर, धीरे-धीरे निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। मन जब विषयों से उपरत हो जाए तब धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कोई चिंतन नहीं करना चाहिए।^{14, 15} मन को संकल्प रहित बनाने के लिए सर्वप्रथम मन को शुभ

⁸ मनसा ह्येव पश्यति, मनसा शृणोति। कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्हीर्षीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव ॥ बृहदारण्यकोपनिषद्— 1.5.3.

⁹ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। श्रीमद्भगवद्गीता— 3., 42.

¹⁰ मनसश्च इन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं हि परमं तपः ॥ महाभारत, शान्ति पर्व, 250, 4

¹¹ चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् । श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 34.

¹² अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते । श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 35.

¹³ यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् । श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 26.

¹⁴ संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः । श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 24.

संकल्पों का आश्रय देना होगा क्योंकि मन को किसी आलम्बन के सहारे रहने की आदत होती है। शुभ संकल्प या शुभ इच्छाओं को महर्षि पतंजलि क्लिष्ट वृत्ति से अभिव्यक्त करते हैं। 'योग वह अचूक युक्ति है जो मानव को अपने शरीर, प्राण, मन तथा अन्त में सम्पूर्ण प्रकृति पर विजय प्राप्त कराती है।'¹⁶ इसलिए योगी को शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म में आसक्ति को त्याग कर आत्मशुद्धि का प्रयास करना चाहिए।¹⁷ जिसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अभ्यास की पूरी विधि का वर्णन करते हैं—

सर्वप्रथम शुद्ध भूमि का चयन करना है, वह भूमि अथवा स्थान न अधिक ऊँचा हो न अधिक नीचा ऐसे स्थान पर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र का आसन बिछाकर बैठें। आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके मन को एकाग्र करें जिससे अन्तः—करण की शुद्धि होगी और योग में प्रवृत्ति होगी।¹⁸ साथ ही ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके शान्त अन्तः—करण से मन को भगवान के परायण होकर अभ्यास करना चाहिए।¹⁹

मनोनिग्रह का परिणाम

जिसने मन को शुभ संकल्पों से युक्त किया है जिसने इन्द्रियों और मन को वश में कर लिया है वह परम शान्त और आनन्द में विहार करता है, दैवीय संपदाओं से युक्त रहता है, उसकी गति उर्ध्वगामी होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ऐसे पुरुष के लक्षण बताते हैं, भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार जिसकी इन्द्रियाँ और मन वश में है जिसने मन से सभी कर्मों का त्याग कर दिया है जो न खुद करता है न करवाता है अर्थात् जो कर्तापन के भाव से शून्य है, ऐसा पुरुष नव द्वारों वाले शरीर रूपी पुर में सुख पूर्वक निवास करता है।²⁰

कठोपनिषद् इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि पर नियंत्रण के माध्यम से योग में प्रवृत्त होने की अनुशंसा करता है। कठोपनिषद् के अनुसार जिसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ निरुद्ध हो जाती हैं साथ ही बुद्धि भी चेष्टा रहित हो जाती है, उसको परम गति की प्राप्ति हो जाती है।²¹ वैशेषिक दर्शन इस अवस्था को योग की अवस्था मानता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार— मन का आत्मा में स्थित होने पर मन का

¹⁵ शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 25.

¹⁶ योगविद्या, सितम्बर 2008, पृ. स.— 10.

¹⁷ कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये। श्रीमद्भगवद्गीता— 5, 11.

¹⁸ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्। श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 11.

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये। श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 12.

¹⁹ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः। श्रीमद्भगवद्गीता— 6, 14.

²⁰ सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्। श्रीमद्भगवद्गीता— 5, 13.

²¹ यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्। कठोपनिषद्— 2, 3, 10.

अनारम्भ (कर्तापन का भाव) समाप्त हो जाता है जो शरीर के दुःखों का हेतु है, वही योग की अवस्था कलाती है।²²

निष्कर्ष

बंधन और मुक्ति का कारण मन है और मन को दिशा देने का कार्य मनुष्य का है। दिशा देने के उपाय श्रीमद्भगवद्गीता जैसे ग्रंथों में निहित हैं जिसमें योग को आधार बनाकर इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से संसार में कर्म करने का निर्देश दिया है। इसी का अनुशरण करके मनुष्य को दुःखों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोयन्दका हरिकृष्णदास (2011) *श्रीमद्भगवत् गीता शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवादसहित*, गीताप्रेस गोरखपुर.
2. स्वामी रामसुखदास (2013) *श्रीमद्भगवत् गीता साधक संजीवनी*, गीताप्रेस गोरखपुर.
3. *श्रीमद्भगवत् गीता* (2011) गीताप्रेस गोरखपुर.
4. सरस्वती, स्वामी शिवानन्द (2016) *श्रीमद्भगवद्गीता*, द डिवाइन लाइफ सोसायटी, उत्तराखण्ड (हिमालय)
5. स्वामी अपूर्वानन्द, (2016) *श्रीमद्भगवद्गीता*, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर
6. स्वामी रंगनाथानन्द (2014) *श्रीमद्भगवद्गीता का सार्वजनीन सन्देश*, प्रथम भाग, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर
7. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (2012) *गीता दर्शन*, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत.
8. परमहंस, स्वामी अङ्गदानन्द (2018) *यथार्थ गीता*, श्री परमहंस स्वामी अङ्गदानन्दजी आश्रम ट्रस्ट, मुम्बई
9. प. आचार्य श्रीराम शर्मा (2016), *108 उपनिषद्, ज्ञान खण्ड*, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)
10. तीर्थ, श्रीस्वामी ओकारनन्द (2011), *पातंजलयोगप्रदीप*, गीताप्रेस गोरखपुर.

पत्रिका

1. योगविद्या पत्रिका (सितम्बर 2008), शिवानन्द मठ, मुंगेर, भारत,

²² तदनारम्भ आत्मस्थ मनसि शरीरस्थ दुःखाभावः, स योगः। वैशेषिक दर्शन- 5, 2, 16.